दैनिक जागरण

समय को बर्बाद करना अपने जीवन को बर्बाद करने के समान है

संघीय ढांचे का निरादर

पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने नीति आयोग की आगामी बैठक में शामिल होने से इन्कार करके यही साबित किया कि वह अभी भी चुनाव के दौर वाली मानसिकता से मुक्त नहीं हो सकी हैं। शायद उन्हें इसकी परवाह नहीं कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाले नीति आयोग की बैठक का बहिष्कार करके वह पश्चिम बंगाल के हितों की ही अनदेखी करेंगी। यह वही ममता बनर्जी हैं जो एक समय अपने नेतृत्व वाले राजनीतिक मोर्चे का नाम संघीय मोर्चा रख रही थीं ताकि राज्यों के अधिकारों को प्राथमिकता देती हुई दिख सकें, लेकिन आज वह संघीय ढांचे की भावना के खिलाफ खड़ी होना पसंद कर रही हैं। ऐसा लगता है कि उन्हें जनादेश को स्वीकार करने में मुश्किल हो रही है। वह उन चंद मुख्यमंत्रियों में शामिल थीं जिन्होंने मोदी सरकार के शपथग्रहण समारोह में शामिल होने से इन्कार किया। यह भी ध्यान रहे कि वह चुनाव प्रचार के दौरान नरेंद्र मोदी को न केवल प्रधानमंत्री मानने से इन्कार कर रही थीं, बल्कि उनसे फोन पर बात करना भी जरूरी नहीं समझ रही थीं। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि वह कई केंद्रीय योजनाओं को लागू करने से भी इन्कार करती रही हैं। इनमें आयुष्मान भारत योजना भी है और देश के पिछड़े जिलों के विकास की भी योजना।

राजनीतिक खुन्नस में जनकल्याण और विकास की केंद्रीय योजनाओं से अपने राज्य को वंचित रखना सस्ती राजनीति के अलावा और कुछ नहीं। यह एक तरह की जनविरोधी राजनीति भी है। मुश्किल यह है कि ऐसी सस्ती और जनविरोधी राजनीति का परिचय अन्य अनेक दल भी देते रहते हैं। यह किसी से छिपा नहीं कि बीते दिनों द्रमुक नेताओं ने हिंदी थोपे जाने का हल्ला मचाकर किस तरह सस्ती राजनीति का प्रदर्शन किया। हिंदी के नाम पर द्रमुक और कुछ अन्य दलों के नेता किस तरह जनता को गुमराह कर रहे थे, इसका पता इससे चलता है कि तमिलनाडु उन राज्यों में प्रमुख है जहां हिंदी को पठन-पाठन का हिस्सा बनाया गया है। बहुत दिन नहीं हुए जब आंध्र प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू ने सीबीआइ को राज्य के मामलों की जांच करने की इजाजत देने से इन्कार कर दिया था। आंध्र प्रदेश के बाद पश्चिम बंगाल ऐसा करने वाला दूसरा राज्य बना था। आखिर ऐसे मनमाने फैसले लेने वाले नेता किस अधिकार से संघीय ढांचे को मजबूती देने की जरूरत जता सकते हैं? पता नहीं ममता बनर्जी चंद्रबाबू नायडू के राजनीतिक पराभव से कोई सीख लेंगी या नहीं, लेकिन किसी भी मुख्यमंत्री को यह शोभा नहीं देता कि वह संकीर्ण राजनीतिक हितों को इतनी अहमियत दे कि राज्य के हित पीछे छूटते हुए दिखें। लोकसभा चुनावों के समय राहुल गांधी की तरह नीति आयोग को खत्म करने का वादा कर रहीं ममता बनर्जी को इस आयोग की रीति-नीति से शिकायत हो सकती है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वह उसकी बैठकों में शामिल होने से इन्कार करें। नीति आयोग को निष्प्रभावी संस्था बताते हुए उन्होंने योजना आयोग को बहाल करने की मांग की है। यह तय है कि ऐसी मांग करते समय वह इससे भली तरह परिचित होंगी कि ऐसा नहीं होने जा रहा है।

अपराध पर अंकुश जरूरी

बिहार में तेजी से बढ़ते अपराध पर यदि अंकुश नहीं लग पा रहा तो निश्चय ही यह बेहद चिंताजनक है। आए दिन होने वाली बड़ी-छोटी आपराधिक घटनाएं बताती हैं कि भले ही कानून-व्यवस्था बनाए रखने के मोर्चे पर लंबे-चौड़े दावे किए जा रहे हों, लेकिन अपराधियों के हौसले पस्त नहीं हो रहे। राजधानी सहित विभिन्न जिलों में लगातार बढ़ रही हत्या, लूट, डकैती, अपहरण सहित अन्य तरह की गंभीर आपराधिक घटनाओं पर तत्काल अंकुश जरूरी है। इसके लिए पुलिस तंत्र की गहन समीक्षा के साथ ही अपराधियों से साठगांठ रखने वाले पुलिस कर्मियों को चिन्हित करना होगा। वैसे पुलिस मुख्यालय इस दिशा में काम कर रहा है। हाल के दिनों में कई दागी पुलिसकर्मियों और अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई हुई है। अपराध नियंत्रण को लेकर जिलों के पुलिस अधीक्षकों को अक्सर दिशा-निर्देश भी जारी किए जाते हैं। फिर भी अपराध पर अंकुश नहीं लग पा रहा। ऐसे में पुलिस मुख्यालय को और भी कठोर कदम उठाना पड़ेगा। देखा जाए तो बड़ी आपराधिक घटनाओं में अपवाद छोड़कर अधिकांश में जांच के नाम पर पुलिस सिर्फ खानापूरी करती नजर आती है। यही कारण है कि पुलिस के प्रति आम लोगों में निराशा का भाव ज्यादा है। कहीं-कहीं तो यह आक्रोश में भी तब्दील होते देखा जा सकता है। कानून-व्यवस्था बनाए रखने के रास्ते में यह एक बड़ी बाधा है। इस स्थिति में परिवर्तन लाए बिना कानून का राज स्थापित नहीं किया जा सकेगा। पुलिस की कार्यशैली में अपेक्षित बदलाव और क्षमता में वृद्धि भी कम आवश्यक नहीं है। आज के दौर में जब अपराधी नए-नए तरीके और तकनीक अपना रहे हैं तो पुलिस को भी उनसे पार पाने के लिए बेहतर प्रशिक्षण और संसाधन से लैस करना होगा। अभी पुलिस के पास आधुनिक संसाधनों एवं तकनीक का अभाव और बेहतर प्रशिक्षण की कमी एक बड़ी समस्या है। पुलिस की चुनौती लगातार बढ़ रही है, जबकि वह इस हिसाब से तैयार नहीं दिखती। अपराध नियंत्रण के लिए इस स्थिति में बदलाव किया जाना समय की मांग है।

समाधान के इंतजार में सांप्रदायिक समस्या

कैप्टन आर विक्रम सिंह

भारत के विचार के साथ अल्पसंख्यक वर्ग का सामंजस्य बैठाना आसान न था, लेकिन हिंदुओं की भीड़ में पहचान गुम न हो जाए इसलिए मजहब को और मजबूती से पकड़ लिया गया

अवधेश राजपूत

लोकसभा चुनाव परिणाम हमारे अल्पसंख्यक समाज के लिए आत्मचिंतन का एक अवसर हैं। इस पर विचार करने की जरूरत है कि आखिर इस जनादेश में अल्पसंख्यक समाज की क्या भूमिका रही? हमें इस प्रश्न पर अपने यहां की सांप्रदायिक पृष्ठभूमि को देखते हुए विचार करना होगा। इस क्रम में यह भी देखना होगा कि विश्व में वे कौन से देश हैं जिन्होंने अपनी सांप्रदायिक समस्या का समाधान कर लिया है? जब अरब सेनाओं ने संपूर्ण अरब क्षेत्र पर विजय के बाद ईरान का रुख किया तो वहां का प्राचीन धर्म ही समाप्त हो गया। इसी के साथ वहां कोई सांप्रदायिक समस्या बची ही नहीं। पाकिस्तान में आजादी के समय 22 प्रतिशत हिंदू थे। आज 1.5 प्रतिशत ही बचे हैं। बांग्लादेश में 1947 में 28 प्रतिशत हिंदू थे। आज 8 प्रतिशत रह गए हैं। इंडोनेशिया में 87 प्रतिशत, मलेशिया में 62 प्रतिशत मुस्लिम हैं। शेष समाज बौद्ध, हिंदू, ईसाई आदि इतनी अल्पसंख्या में है कि इन देशों में भी कोई सांप्रदायिक समस्या नहीं है। स्पष्ट है कि आज जिन देशों में यह समस्या नहीं है तो वहां इसका मुख्य कारण जनसांख्यिकी के अनुपात का पूरी तरह से एक धर्म के पक्ष में होना है। जहां समस्या है, उनमें प्रमुख है चीन के उइगर मुस्लिमों वाला इलाका और म्यांमार का रोहिंग्या क्षेत्र। चीन ने समाधान के लिए प्रशिक्षण कैंपों का सहारा लिया है। 1933 में उइगर और चीनी आबादी का अनुपात जो क्रमशः 77 और 5.5 प्रतिशत था, वह 2015 में 45 और 42 प्रतिशत हो गया है। स्पष्ट है कि चीनी शासक जनसांख्यिकी में परिवर्तन के माध्यम से समस्या का समाधान करते मालूम पड़ रहे हैं। म्यांमार में रोहिंग्या मुसलमानों की संख्या 10 लाख थी। 2015 से वहां उत्पीड़न का क्रम प्रारंभ हुआ और 9 लाख रोहिंग्यों ने भागकर बांग्लादेश, फिर चोरी छिपे भारत में भी शरण ली है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर म्यांमार की बड़ी आलोचनाएं हो रही हैं, किंतु उन्होंने अपनी समस्या का, जैसा उनकी समझ में आया, समाधान कर लिया।

भारतीय राजनीति की आज की मजहबपरस्ती के बहुत पहले इतिहास के लंबे दौर में अन्य देशों के समान अपनी सांप्रदायिक समस्या के समाधान के अवसर आए थे, लेकिन सक्षम नेतृत्व के अभाव के कारण समाधान के रास्ते नहीं बने। समाधान की जो सूरतें बनीं वे स्थगित होती गईं। मुगल साम्राज्य के पराभव के बाद यदि दिल्ली में मराठा साम्राज्य स्थापित हुआ होता तो आज भारत में बहुत-सी अन्य समस्याएं तो होतीं, लेकिन कोई हिंदू-मुसलमान समस्या न होती। पानीपत की तीसरी जंग में मराठों की हार और फिर भारत में बढ़ते ब्रिटिश वर्चस्व ने समाधान को स्थगित कर दिया। यदि 1857 के विद्रोह में अंग्रेजों की पराजय हो जाती तो फिर आंतरिक सत्ता संघर्ष इस सांप्रदायिक समस्या का भी समाधान कर देता, लेकिन ब्रिटिश विजयी हुए और समाधान की स्थितियां नहीं बनीं। फिर बदलते हुए घटनाक्रम में सांस्कृतिक पुनर्जागरण, आधुनिकता के रुझान, अंग्रेजों की सांप्रदायिक संतुलन की नीति आदि ने इस सांप्रदायिक विवाद को तब तक के लिए स्थगित कर दिया जब तक ब्रिटिश खुद इसमें भागीदार नहीं हो गए। अंग्रेजों की सक्रिय भागीदारी 1905 में बंगाल के सांप्रदायिक विभाजन से सामने आती है। यहां से आगे हिंदू-मुस्लिम हित बड़े स्पष्ट रूप से एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े दिखते हैं। वह समस्या जिसे 1707 में औरंगजेब की मौत के बाद से ही समाधान की दरकार थी, स्थगित होते-होते 1940-47 में भारत विभाजन के मुहाने पर लाकर खड़ी कर दी गई। 'दो राष्ट्रों के सिद्धांत' के तहत एक नकली देश की सरहदें बनाकर सांप्रदायिक समस्या का समाधान पुनः स्थगित कर दिया गया।

अविभाजित भारत में मुस्लिम आबादी 33 प्रतिशत थी। आजादी के आंदोलन में आखिरकार यह तय हुआ कि हिंदू मुसलमान साथ नहीं रह पाएंगे। पाकिस्तान निर्माण के मूल में भारतीय राष्ट्रीयता का अस्वीकार है। पाकिस्तान बनने के बाद भारत की 15 प्रतिशत मुस्लिम आबादी को सहअस्तित्व का दर्शन विकसित करना चाहिए था, लेकिन देश विभाजन के बाद भारत में पाकिस्तानी सोच का विकास हुआ। जब कहीं धर्मपरिवर्तित समाज को उसके इतिहास, संस्कृति से काट दिया जाता है तो फिर वहां का इतिहास उसका नहीं रहता। इतिहास के नायक आपके शत्रु हो जाते हैं। संस्कृति का अस्वीकार हो जाता है। गैरमुल्की सोच के प्रभाव से अपना ही देश दारुल हरब हो जाता है। भारत के मुख्य भाग से विभाजन के बाद मात्र 16 प्रतिशत लोग ही पाकिस्तान को रुखसत हुए। पाकिस्तान बनवाने के बाद अधिकांश अल्पसंख्यक समाज एक मजहबी खुमार के साथ भारत में रह गया, जबकि इस अल्पसंख्यक समाज को अपने को पाकिस्तानी सोच से पूरी तरह से बाहर लाने का काम करना था। यह काम इसलिए नहीं हो सका, क्योंकि हमारी राजनीति उसे वोट बैंक के रास्ते पर ले आई, जिसके कारण अलग पहचान बनाए रखना फायदे का सौदा हो गया।

भारत के बड़े नेताओं खासकर गांधी और नेहरू ने आजादी के आंदोलन में अल्पसंख्यक समाज की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए तुर्की के खलीफा को हटाए जाने को अपना मुद्दा बना लिया। भारत के विचार के साथ अल्पसंख्यक वर्ग का सामंजस्य बैठाना आसान काम नहीं था, पर हिंदुओं की भीड़ में पहचान गुम न हो जाए इसलिए मजहब को और मजबूती से पकड़ लिया गया। वंदे मातरम का विरोध करना, राष्ट्रीय प्रतीकों का असम्मान करना, अपने असल इतिहास एवं संस्कृति को भूले रहना, विभाजन के बाद फिर से अलगाव की भावना को हवा देना यह तो फर्ज नहीं था। राष्ट्रीयता की भावना मजहब विरोधी नहीं है। अल्पसंख्यक वर्ग द्वारा राष्ट्रवाद को सम्यक महत्व न दे पाना, देश के विभाजन को अर्थहीन कर देता है।

पाकिस्तान से अब तक हुए चार युद्ध इसी विभाजित मानसिकता की उपज हैं। हर युद्ध आमंत्रण था समस्या के समाधान का, लेकिन हमें ऐसा नेतृत्व नहीं मिला जो कश्मीर जैसी सांप्रदायिक समस्या को अंतिम समाधान तक ले जाता। दोष नेतृत्व का भी नहीं है, क्योंकि जैसा समाज होता है उसे वैसा ही नेतृत्व भी मिलता है। हम उन्हें नेता मानते रहे जिसकी सोच कभी समाधान की रही ही नहीं। समस्या के स्थगन को वे समाधान मानते रहे। ये हम ही हैं जो आजादी की जंग में कभी भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद जैसे क्रांतिकारियों के साथ नहीं खड़े हुए। हमने उन्हें फांसी चढ़ने दिया। जेल तोड़ कर आजाद नहीं कराया। फिर आंसू बहाते रहे। गुलामी की संस्कृति का भार हमारी आत्मा पर बहुत भारी रहा है। इसी गुलाम मानसिकता से पैदा समझौतापरस्ती देश की सांप्रदायिक समस्या की जिम्मेदार है। पाकिस्तान ने इस मनोवैज्ञानिक-सांप्रदायिक समस्या को जीवित रखा है। राष्ट्रवाद का कोई मध्य मार्ग नहीं होता। यदि आप राष्ट्रवादी नहीं हैं तो फिर आप राष्ट्रविरोधी हैं। प्रधानमंत्री मोदी की निर्णायक विजय के बाद राष्ट्रनिरपेक्षखंडित सोच वाले कैंपों में खलबली है। समाधान का समय कभी भी घोषणा करके नहीं आता। राष्ट्र ने तो अपना निर्णय सुना दिया। अब मुश्किल फैसलों का-समाधान का कालखंड प्रारंभ होने को है।

(लेखक पूर्व सैनिक एवं पूर्व प्रशासक हैं)

response@jagran.com

वक्त की मांग है पुरुष आयोग का गठन

क्षमा शर्मा

मानव अधिकार स्त्री-पुरुष, दोनों के होते हैं और कानून का काम सभी के मानव अधिकारों की रक्षा करना है

पिछले साल मी टू अभियान का बहुत शोर हुआ था। उस दौरान महिलाओं का एक वर्ग कह रहा था कि अच्छा है कि औरतें अपने प्रति हुए यौन अपराधों की बातें कह रही हैं। बात सच भी थी, क्योंकि औरतों को अपने प्रति हुए इस तरह के अपराधों को छिपाने की सलाह कोई और नहीं उनके परिवार वाले ही देते थे, लेकिन यह भी सच है कि धीरे-धीरे झूठे मामले सामने आने लगे। मी टू आंदोलन अमेरिका से शुरू होकर यहां पहुंचा। अमेरिका में एक अटार्नी जनरल पर भी यौन शोषण का आरोप लगाया गया। बाद में आरोप लगाने वाली महिला ने कहा कि वह तो उन्हें जानती ही नहीं। कभी मिली भी नहीं। अपने यहां भी एक ब्यूटी पेजेंट में भाग लेने वाली एक लेखिका ने एक बड़े लेखक पर ऐसे आरोप लगाए, लेकिन जब उस लेखक ने उस महिला की मेल सार्वजनिक कर दी तो वह मैदान छोड़कर भाग खड़ी हुई। यह भी लगा कि इस तरह की बातें बढ़-चढ़कर इसलिए भी की गईं ताकि रातों रात प्रसिद्धि मिल सके। इस मी टू विमर्श पर कई तरह के विचार सामने आए। वे महिलाएं इस विमर्श से बाहर थीं जो दो जून की रोटी और अपने बाल-बच्चों के लिए हाड़-तोड़ मेहनत करती हैं और इसी दौरान तमाम तरह के अत्याचार और शोषण से गुजरती हैं। ऐसी महिलाएं चर्चा का विषय तब बनती हैं जब कोई एनजीओ या बड़ा संस्थान अथवा मीडिया उन्हें अपने विचार प्रकट करने के लिए बुलाता है। मी टू के दिनों में ही वी टू, ही टू, मैन टू की आवाजें सुनी गईं, लेकिन वे बहुत धीमी थीं।

महिलाओं को अधिकार मिलें और कानून उनकी सहायता करे, लेकिन कानून के नाम पर निरपराधों को फंसाना, उनकी प्रतिष्ठा को धूमिल करना लोकतंत्र और मानवता के खिलाफ है। मानव अधिकार न केवल स्त्रियों के होते हैं, न केवल पुरुषों के। वे सबके लिए होते हैं और कानून का काम सभी के मानव अधिकारों की रक्षा करना है। अफसोस कि स्त्रियों के लिए जो कानून बने हैं वे इतने एकपक्षीय हैं कि वे औरतों को देवी और सदा सच बोलने वाली और पुरुषों को खलनायक के तौर पर पेश करते हैं। ये एकपक्षीय कानून पुरुषों के घर की औरतों को भी पितृसत्ता का प्रतीक मानकर सताने का काम करते हैं। इसीलिए जेंडर न्यूट्रल कानूनों की मांग उठने लगी है। जो भी अपराधी हो-स्त्री या पुरुष उसे सजा मिले। कानून का काम अपराधी को सजा देना ही होना चाहिए। उसकी लाठी से निरपराध को क्यों सताया जाए?

हाल में मीडिया के एक हिस्से में मैन टू अभियान चला। मैन टू अभियान चलाने में अग्रणी भूमिका अभिनेत्री पूजा बेदी ने निभाई। उन्होंने कहा कि अब वक्त आ गया है कि पुरुषों के अधिकारों की बातें भी होनी चाहिए। आखिर यह वह जमाना नहीं जिसे पितृसत्ता के वर्चस्व का पर्याय माना जाता हो। अब महिलाओं को भी पूरे अधिकार हैं। इसके बावजूद महिलाएं जब चाहें तब खुद को शक्तिशाली कहती हैं और जब चाहे तब बेचारी दिखाने लगती हैं। उदाहरण के तौर पर लिव इन में रहने वाली महिलाएं, जो रिश्ता टूटने पर दुष्कर्म का आरोप लगा देती हैं। जबकि अदालतें सहमति से संबंध को दुष्कर्म नहीं मानतीं। पूजा बेदी ने मी टू के दिनों का उदाहरण देते हुए कहा कि उन दिनों पीआर एजेंसीज सक्रिय हो गई थीं। वे फिल्म जगत में जगह बनाने को आतुर लड़कियों को सलाह दे रही थीं कि वे नामी-गिरामी लोगों पर ऐसे आरोप लगा दें। इससे उनकी चर्चा होगी और काम मिलेगा। उन्होंने राष्ट्रीय महिला आयोग के आंकड़े देकर यह भी बताया कि अप्रैल 2013 से जुलाई 2014 तक दुष्कर्म के जितने मामले दर्ज कराए गए उनमें से 53.2 प्रतिशत झूठे पाए गए। एनसीआरबी के आंकड़ों में भी बताया गया है कि दहेज से संबंधित दस प्रतिशत केस झूठे होते हैं। उनके अनुसार उच्चतम न्यायालय ने भी यही कहा कि जो कानून महिलाओं को उनके पति और ससुराल वालों से रक्षा के लिए बनाया गया था उसे ससुराल वालों और पति से बदला लेने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। पूजा बेदी ने मांग की कि वक्त आ गया है कि महिला कमीशन की तर्ज पर पुरुष कमीशन भी बनाया जाए ताकि निरपराध पुरुष भी अपनी बात कह सकें, क्योंकि उनकी बात कोई नहीं सुनता-न मीडिया, न सरकार और न ही समाज। वे बरी होने के बाद भी अपमान झेलने को मजबूर होते हैं। उनका परिवार तहस-नहस हो जाता है।

अपने देश में हर वर्ष औसतन 94 हजार पुरुष आत्महत्या करते हैं। यह संख्या औरतों के मुकाबले छह प्रतिशत अधिक है। आत्महत्या का बड़ा कारण पारिवारिक और वैवाहिक विवाद होता है। इस पर महिला अधिकारों की एक प्रवक्ता ने बड़ी मासूमियत से कहा था कि पुरुष ऐसा इसलिए करते हैं, क्योंकि वे अवसाद का शिकार हो जाते हैं। क्या इसकी जांच-पड़ताल की जरूरत नहीं कि आखिर कोई अवसाद का शिकार क्यों होता है?

(लेखिका साहित्यकार एवं स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

सच्चा जीवन

जो व्यक्ति ईश्वर को कभी नहीं भूलता और सदैव अपने कर्तव्यों को निष्ठापूर्वक निभाता है और बदले में जो मिल जाए उसी में संतुष्ट हो जाता है, वही सच्चा और सुखी है। बुद्ध ने कहा कि कामी व्यक्ति अनेक बार मरता है। जितनी कामना, उतनी बार मृत्यु। संतोष जीवन है और असंतोष मृत्यु। संतोष का मतलब है कि अपने कर्म को पूरे उत्साह से करना और उससे जो भी फल मिले उससे संतुष्ट हो जाना है।

मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र और सबसे बड़ा दुश्मन उसके विचार ही हैं। मनुष्य को यह जानना-समझना होता है कि कौन-सा विचार उसका मित्र है और कौन-सा शत्रु। सकारात्मक विचार अपने साथ कई दोस्तों को लाता है और नकारात्मक विचारों वाला व्यक्ति दुश्मनों से घिर जाता है। असल में सभी लोग जीवन को अपने-अपने नजरिए से देखते हैं, कोई कहता है कि जीवन एक खेल है, कोई कहता है कि जीवन ईश्वर का दिया हुआ उपहार है, कोई कहता है कि जीवन एक यात्रा है, कोई कहता है कि जीवन एक दौड़ है। हम जिस नजरिए से जीवन को देखेंगे, हमारा जीवन वैसा ही बन जाएगा, लेकिन सच्चा जीवन वही जी सकता है, जो अपने जन्म और मृत्यु के बीच के समय को भरपूर हास्य और प्रेम से भर दे।

अक्सर मनुष्य अपने भविष्य एवं अतीत के बारे में सोचता रहता है और इस चक्कर में वह वर्तमान की कोई परवाह नहीं करता, जबकि जीवन वर्तमान में ही है। कल कभी नहीं आता, जो है वह आज और अभी है। जो समय बीत गया, उसे याद करके मनुष्य को पछताना नहीं चाहिए। अगर अतीत में मनुष्य से कोई गलती हुई भी है तो उसे उससे सबक लेकर वर्तमान को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए। मनुष्य को भविष्य में आने वाले संकटों को देख घबराना नहीं चाहिए, क्योंकि जिस मनुष्य का वर्तमान आनंदित है, उसका भविष्य भी सुंदर होगा। वर्तमान को आनंदित बनाने के लिए मनुष्य को कोई भी कार्य शुरू करने से पहले उसके सभी पहलुओं पर गौर कर लेना चाहिए। जैसे वह यह कार्य क्यों करना चाहता है, क्या वह इसको अकेले कर पाएगा या उसे और लोगों की जरूरत पड़ेगी और इस काम के नतीजे क्या होंगे। बिना सोचे-विचारे किए गए काम का नतीजा अक्सर दुख देता है।

आचार्य अनिल वत्स

तथ्य-कथ्य | खास लोकसभा सीटों पर नोटा को मिले वोट (कोष्ठक में कुल नोटा वोटों का प्रतिशत)

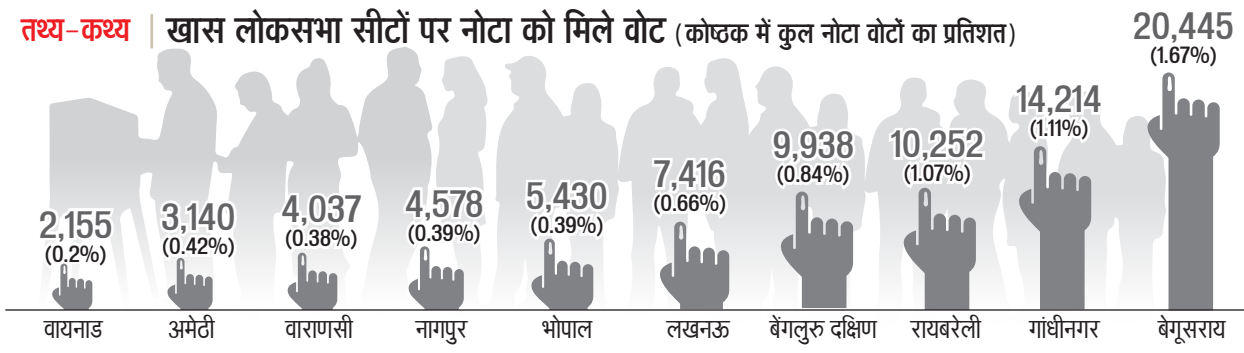

हमारे समय में 'अंधेर नगरी'

फिर से

'अंधेर नगरी' में अंधेर का मतलब गड़बड़ी, निराशा और ऐसी स्थिति का होना है जिसमें वह सब होता है जिसे नहीं होना चाहिए

मैंने अपने एक शिक्षक से सवाल किया कि 'अंधेर नगरी' आज के समय में हम क्यों पढ़ें? सर ने सवाल दागा कि मैं पूछता हूं कि क्यों न पढ़ें? बात तो सही है कि क्यों न पढ़ें। अंधेर नगरी नाम से ही स्पष्ट है कि ऐसी नगरी है जिसमें अंधेर है। अंधेर का अर्थ अगर आप केवल उजाले की अनुपस्थिति से लगाएंगे तो ठीक-ठीक नहीं समझ पाएंगे। यहां अंधेर का मतलब गड़बड़ी, निराशा और ऐसी स्थिति का होना है जिसमें वह सब होता है जिसे नहीं होना चाहिए। यानी अव्यवस्था ही व्यवस्था के रूप में स्वीकृत है। आजकल जिसे हम न्यू नॉर्मल कहते हैं, वह दरअसल एबनॉर्मल है, लेकिन उसे कोई मानने को तैयार नहीं। यह 'अंधेर नगरी' एक रूपक में बदल जाता है और इसका विस्तार नगर तक सीमित न रहकर समस्त देश हो जाता है। और आज के दौर में जब अंधेर नगरी के रूपक के नजरिए से अपने देश को देखते हैं तो इस रूपक का नवीन अर्थ हमारे सामने खुलता जाता है और इसकी सीमाओं का भी पता चलता है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'अंधेर नगरी चौपट राजा' नाटक अंग्रेजी शासन के दौर में लिखा था। यह वह दौर था जब हिंदी में नाट्य लेखन शैशवास्था में था, भारतेंदु नाटक के इर्द-गिर्द हिंदी समाज में राजनीतिक और समाज सुधार की चेतना के प्रसार को केंद्रित रखे हुए थे। वे नाटक लिखते थे, अभिनय करते थे, रंग मंडलियां तैयार करते थे... विविध स्तरों पर सक्रिय थे। 'अंधेर नगरी' के लिखे जाने तक वे 'भारत दुर्दशा' लिख चुके थे जिसमें वे आधुनिक भारत की चिंताजनक स्थिति को व्यंग्य और यथार्थ के जरिये दिखा चुके थे, लेकिन 1876 में ड्रामेटिक परफॉर्मेंस एक्ट भी लागू हो चुका था। नाटक और नाट्य प्रदर्शनों पर अंग्रेजी शासन की नजर थी। नाटकों पर प्रतिबंध लगना शुरू था। नाटककार सीधे-सीधे अंग्रेजी शासन की आलोचना करने के बजाय रूपक के जरिये अंग्रेजी शासन के सच को बयां करने की युक्तियां खोज रहे थे। 'अंधेर नगरी' को भी ऐसी ही युक्ति में गिना जा सकता है। इस युक्ति के जरिये भारतेंदु ने लोक प्रचलित प्रहसन को अपनी प्रतिभा से समसामयिकता में ढाल कर ऐसे नाटक में तब्दील किया जो अपने दौर में तो लोकप्रिय हुई ही, प्रकाशन और पहले मंचन के बाद से ही प्रासंगिक बनी रही। दुख की बात है कि आज एक भी सामयिक साहित्यिक प्रयास हमारे सामने नहीं है जिसमें आज के सच का निरूपण हो और वह जनता तक संप्रेषणीय हो? अगर नहीं है तो हमें 'अंधेर नगरी' की शरण में जाना ही होगा उसे पढ़ना होगा, मंचित करना होगा, क्योंकि वह बाजार और राज्य दोनों की हकीकत बयान करता है। आज यही दोनों नियामक शक्तियां हमारे जीवन पर हावी होने की लगातार कोशिश कर रही हैं।

'अंधेर नगरी' को ऐसे दौर में पढ़िए जहां बाजार में हर चीज बिकाऊ है, वस्तु का मोल उसकी गुणवत्ता के हिसाब से नहीं है और इस अंधेर नगरी में बुनियादी सवालों को कोई सुनने वाला नहीं है कि गरीब की बची खुची संपत्ति को कौन लूट रहा है? कहां तो राजा का दावा है कि उसके यहां ऐसा न्याय होगा जैसा यम के यहां भी नहीं, लेकिन इस न्याय व्यवस्था में नागरिकों का हाल क्या हो गया है?

(साभार : रंग विमर्श ब्लॉग में अमितेश)

चुनाव नतीजों ने दिया नया संदेश

लोक गायिका मालिनी अवस्थी ने अपने आलेख 'राजनीतिक सबक सिखाने वाले नतीजे' में जातिवादी राजनीति के गणित को तोड़ने वाली सामाजिक केमिस्ट्री की जो बात की है, वह देश को नया राजनीतिक संदेश दे रही है। देश के विभिन्न प्रदेशों में जातिवाद और संप्रदायवाद से उपजे क्षेत्रीय राजनीतिक दलों ने पिछले तीन दशकों से अपने सांप्रदायिक और जातिवादी गणित से केंद्र में बहुमत की सरकार नहीं बनने दी। 2014 में पहली बार देश की जनता ने क्षेत्रीय दलों के इस जातिगत गणित को तोड़कर केंद्र में पूर्ण बहुमत वाली भाजपा नीत राजग सरकार स्थापित की। बहुमत युक्त मोदी सरकार की सबका साथ-सबका विकास से समन्वित राष्ट्रहितैषी नीतियों ने देश के आम जनमानस को इतना प्रभावित किया कि 2019 का आम चुनाव ही मोदीमय हो गया। इस आम चुनाव में भाजपा के पक्ष में जाने वाले पचास प्रतिशत वोट ने यह साबित कर दिया कि मोदी सरकार की जनहितैषी नीतियों से देश संतुष्ट है। मोदी के पक्ष में बन रहे सामाजिक रसायन को कांग्रेस सहित सपा, बसपा और राजद जैसे बड़े क्षेत्रीय राजनीतिक दल समय रहते भांप नहीं पाए। ये दल इसी मुगालते में रहे कि जनता परिवर्तन चाहती है। अपने चुनावी गणित को जनता के सामने रखते हुए इन विपक्षी दलों से एक और चूक हो गई कि इन्होंने सत्तारूढ़ भाजपा सरकार का नीतिगत विरोध न करके मोदी के साफ-सुथरे व्यक्तित्व पर कीचड़ उछाला। यह चूक इनको इतनी भारी पड़ी कि जनता ने विपक्ष की इस बकवास को नकारते हुए मोदी के पक्ष में झूमकर मतदान किया और अकेली भाजपा को बहुमत से बहुत आगे 303 सीटों पर ले जाकर खड़ा कर दिया। देश की जनता द्वारा मोदी के राष्ट्रसेवी व्यक्तित्व के प्रति व्यक्त किया गया यह विश्वास अकल्पनीय था। इस जन-विश्वास से यह संदेश प्रसारित हुआ है कि अब देश को जातिगत विकृत राजनीति नहीं, अपितु भ्रष्टाचार मुक्त विकास चाहिए। ऐसे में अभी भी परिवारवाद, जातिवाद और संप्रदायवाद की विकृत राजनीति में जकड़े विपक्षी दलों को इस नए राजनीतिक संदेश से सबक लेने की जरूरत है।

pandeyvp1960@gmail.com

पर्यावरण को भी सुधारें

मोदी सरकार-2 सबका साथ सबका विकास सूत्र को लेकर देश के चहुंमुखी विकास को लक्ष्य बनाकर काम कर रही है। देश में गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार और जनसंख्या वृद्धि ये चार प्रमुख समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं। इससे तो निपटना ही है, किंतु उससे भी ज्यादा विकराल समस्या बढ़ते प्रदूषण की है। इस पर भी आज ही ध्यान देने की जरूरत है। अगर आज ध्यान नहीं दिया तो कल वाली पीढ़ी किसी भी अग्रज को माफ नहीं करेगी। जब उसे सांस लेने के लिए भी ऑक्सीजन खरीदना पड़ेगा। जैसे आज बोतल बंद पानी खरीदना पड़ रहा है। सड़कों का विकास हो, पर सीमेंट कंक्रीट के जंगल का नहीं। विशाल अट्टालिकाएं बनें पर उसके साथ ही वहां हरियाली की सीमा भी निश्चित की जाए, कारखानों का उत्थान हो किंतु उससे फैलने वाले प्रदूषण को रोकने की व्यवस्था भी हो। करोड़ों की संख्या में पेड़-पौधे रोपे जाएं, वे कागजी न होकर वास्तविक हों साथ ही उनकी सही देखभाल भी हो। बरसात के पानी को रोकने, तालाबों व नहरों के निर्माण आदि के काम भी युद्ध स्तर पर हों तो जल संकट से तो मुक्ति मिल ही सकती है साथ ही खेती और नए लगे पेड़ पौधों को सींचने के लिए पानी की भरपूर व्यवस्था भी हो सकती है। हरा-भरा गांव होगा तो हरा-भरा शहर भी, हरा-भरा प्रदेश होगा तो हरा-भरा देश भी। जो आज तो सुकून देगा किंतु कल भी सुकून भरी जिंदगी से नई पीढ़ी को लबरेज कर देगा।

mahesh_nenava@yahoo.com

हिंदी पर फिर हाय-तौबा

हिंदी के मुद्दे पर दक्षिणी भारत में उठे विरोध के स्वरों को दबाने के लिए केंद्र सरकार को जिस तरह त्रिभाषा फार्मूले की सिफारिश में संशोधन करना पड़ा, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि देश में शिक्षा की दिशा तय करना भी दबाव की राजनीति से मुक्त नहीं है। अब विद्यार्थी छठी कक्षा में हिंदी, अंग्रेजी और क्षेत्रीय भाषा में से किसी एक विषय को छोड़ सकते हैं। जाहिर है, गैर हिंदी भाषी प्रदेशों में ज्यादातर बच्चे हिंदी को ही छोड़ेंगे। हिंदी देश में सबसे ज्यादा बोली जानेवाली भाषा है। अफसोस की बात है कि सुविचारित त्रिभाषा फार्मूले की सिफारिश पर सिर्फ इसलिए अमल नहीं हो पाएगा कि कुछ प्रदेशों के राजनीतिज्ञ इसके दूरगामी परिणामों को समझने के बजाय इसे अपनी आंखों की किरकिरी मानने की भूल कर बैठे हैं।

युधिष्ठिर लाल कक्कड़, गुरुग्राम

मेलबाक्स

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :

दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran